Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540

गुप्तोत्तर काल में सामाजिक छुआ-छुत की स्थिति

Abhishek Kumar Bhagat*

Research Scholar, History Department, Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar

सार - परम्परागत वर्ण व्यवस्था का जिसके अनुसार समाज मोटे रूप से चार वर्णों में बंटा हुआ था, अभिलेख तथा साहित्यिक ग्रंथों में भी उल्लेख किया गया है। पाटन नरेश यद्यपि बौद्ध थे, फिर भी उन्होंने वर्ण व्यवस्था की रक्षा करने वाले शासक कहा गया है।

----------X----------

समाज में ब्राह्मणों को श्रेष्ठ स्थान था-केवल धार्मिक ग्रंथों के से ही नहीं वरन विदेशी यात्रा वृतांत से भी इस कथन की पुष्टि होती है-

ह्वेनसांग के अनुसार अनेक वर्ण और जातियों में ब्राह्मण सबसे अधिक पवित्र है और उसे सबसे अधिक सम्मान मिलता है। यही विचार अलबेरूनी और अलमसुदी ने भी प्रकट किये हैं।

ब्राह्मणों का मुख्य कार्य अध्ययन-अध्यापन, यजन भ्राजन (यज्ञ करना एवं यज्ञ करवाना) और दान लेना था। वे शास्त्री द्वारा निर्दिष्ट आचार का पालन करते थे। वेद-वेदांग तथा अन्य शास्त्रों में पारंगत होते थे। उन्हें क्षेत्रीय आचार्य तथा उपाध्याय कहा जाता था। ऐसे ब्राह्मण दान के पात्र समझे जाते थे। अनके ब्राह्मण पुरोहित कार्य करते थे।

किंतु बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश में ब्राह्मणों को आजीविका चलाना कठिन हो गया था। बाहरी आक्रमणों से उत्पन्न राजनीतिक उथल-पुथल तथा आर्थिक विवशताओं ने ब्राह्मणों को अन्य व्यवसाय अपनाने के लिए वाध्य किया। इस युग में भूमि, शौर्य तथा प्रभुसत्ता स्तर के मानक थे। मेघातिथि के अनुसार विदेशी आक्रमण से यदि खतरा हो और सामाजिक दुर्व्यवस्था का भय उत्पन्न हो जाए तो ब्राह्मण शस्त्र ग्रहण कर सकता है। मनु XII. 100 पर टीका करते हुए मेघातिथि ने वेदज्ञ ब्राह्मण को सेनापति तथा राज पद ग्रहण करने की अनुमति दी है।

इस युग में स्मृतिकार पराशर ने ब्राह्मण के लिए कृषि एक सामान्य व्यवसाय बतलाया है बशर्ते वे स्वयं खेती न करे। प्रायष्चित के रूप में उसे उपज को 1/20 भाग देवताओं को, 1/30 भाग ब्राह्मणों को और 1/6 भाग राजा को देना पड़ता था। इस संदर्भ में इस काल के अभिलेखों में ब्राह्मणों को भूमिदान दिए जाने का उल्लेख विशेष अर्थ रखता है। जिन ब्राह्मणों को भूमि बड़े पैमाने पर दी जाती थी वे शुद्र कृषकों द्वारा खेती करवाते थे। सवर्त स्मृति के अनुसार ब्राह्मण को हल और बैल भी दान देने का उल्लेख है। मध्य प्रदेश, प्राच्य तथा कुछ स्थानों के ब्राह्मण आचार में कट्टर नहीं थे। इन देश के ब्राह्मण स्वयं अपने हाथ से खेती करते थे। ह्वेनसांग ने टक्ल देश के ब्राह्माण को स्वयंम खेती करते देखा। चालुक्य नरेश कुमार पाल के एक लेख (1144) में ब्राह्मण खेतिहरों के नाम दिए गए हैं। कथाकोष प्रकरण में ब्राह्मण खेतिहरों का उल्लेख है। इस काल में स्मृतियों में ब्राह्मण को आपातकाल में व्यापार से भी आजीविका चलाने की अनुमति है। प्रतिहारकालीन पेहोवा अभिलेख में एक ब्राह्मण का घोड़े के व्यापारी के रूप में उल्लेख है।

इस युग की महत्वपूर्ण घटना राजपुतों का उदय है जिन्होंने प्राचीन क्षत्रियों का स्थान लिया था। प्राचीन ग्रंथ में राजवंश के कुमारो को राजपुत्र कहा गया है। किंतु इस काल में यह शब्द लड़ाकु जातियों तथा सामंत वर्ग के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। यह युद्ध प्रिय जाति थी और अपने राजवंश भी स्थापित कर लिये थे। इनके अधीन अनेक सामंत थे जिन्हें राज्य के अन्तर्गत भू-भाग विशेष में शासक नियुक्त कर दिया गया था। वेतन के बदले उन्हें शासन क्षेत्र के अन्तर्गत भूमि पर सभी राज्याधिकार दे दिए गए थे। 12वीं शताब्दी तक राजपूतों की 36 जातियां प्रसिद्ध थी। जैसे-चालुक्य, चैहान, प्रतिहार, परमार, गुहिल, चंदेल, कछवाहा, भेद इत्यादि। ह्वेनसांग ने मनिपुर और सिंध देश के राजा को शुद्र कहा है। कामरूप का शासक ब्राह्मण था। बंगाल के 7वीं सदी के लेख में एक शुद्र राजा उल्लेख है। दक्षिण के अनेक लेख प्राप्त हुए हैं जिनमें नायक तथा रेड्डी वंश के शासक अपने को शुद्र कहते थे।

www.ignited.in

इस वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए मनु के टीकाकार मेघातिथि ने लिखा है कि राजा शब्द अक्षत्रिय के लिए प्रयुक्त हो सकता है वशर्ते की वह राज्य का स्वामी हो।

इब्न खुर्दादव में क्षत्रियों के दो वर्ग का उल्लेख है-सेवूकफूरिया तथा कतरिया। अल्तेकर के अनुसार सवूकफूरिया सत् क्षत्रिय थे इसके अंतर्गत राजवंश तथा सामंत वर्ग और योद्धा क्षत्रिय वर्ग को सम्मिलित किया गया है। कतरिया साधारण क्षत्रिय थे जो कृषि, व्यापार इत्यादि व्यवसायों से भी आजीविका चलाते थे। अहार अभिलेख से क्षत्रिय व्यापारी सहायक का उल्लेख है। अलबीरूनी के वृत्तांत से पता चलता है कि राजपुत-क्षत्रिय ब्राह्मणों के समान समझे जाते थे। किंतु खेतिहर क्षत्रीय और वैश्य बराबर थे और शुद्र बहुत ऊंचे नहीं थे क्योंकि इन्हें वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था और धार्मिक कृत्य पुराणोवत मंत्रों द्वारा होते थे वैदिक मंत्रो द्वारा नहीं।

धर्मशास्त्रों में वैश्य के लिए कृषि, पशुपालन और व्यापार जैसे व्यवसाय निर्दिष्ट किए गये हैं और पराशर ने कुसीद वृत्ति (सूद पर रूपया उधार देना) वैश्य का व्यवसाय बताया। बौद्ध, जैन और वैष्णव धर्म में प्रतिपादित अहिंसा -सिद्धांत के प्रभाव से वैश्य सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए कृषि कर्म तथा पशुपालन छोड़ दिया था और व्यापार को अपनी आजीविका का साधन बना लिया था। भविष्यत कथा में एक वैश्य के संबंध में कहा गया है कि उसने नावों को खरीदने के लिए पशु बेच दिए। माघ के शिशुपाल वध में व्यापारियों को राजा की सेना के साथ यात्रा करते हुए तथा फौजी खेमे में समान बेचते हुए प्रस्तुत किया गया है। अब तक के अभिलेख के अनुसार बंगाल, बिहार, गुजरात और मालवा वैश्य वर्ग के लोग अपनी समृद्धि के कारण समाज में प्रभावशाली हो गए थे और राजनीतिक पदों के लिए स्पर्धा करते थे। बिहार प्रदेश से प्राप्त आठवीं सदी के दुधपाणि अभिलेख से ज्ञात होता है कि उद्यमान नामक एक समृद्धि व्यापारी ने तीन गांव के लोगों की ओर से राजकीय कर दिया। इस गांव के लोगों ने उदयमान को अपना राजा स्वीकार कर लिया। बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन के समय सुवर्ण के व्यापारी इतने समृद्ध थे कि वे अपने धन और वैभव के कारण राजा का विरोध करने लगे और राजा से युद्ध के लिए उतारू हो गये। दंड स्वरूप राजा ने उन्हें जाति से वहिष्कृत कर दिया। चालुक्य नरेश से भी गुजरात के कई समृद्धि व्यापारियों का संघर्ष हुआ।

इन सब के बावजूद वैश्य को महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिलास। खानपान तथा अन्य प्रकार के सामाजिक व्यवहार में वैश्य शुद्रों के अधिक निकट दिखाई पड़ता है। वैश्य के लिए वैदिक संस्कार सिद्धांत रूप से अनुमत थे किंतु अलवरूनी न लिखा कि वैश्य और शुद्र को वेदों के अध्ययन या श्रवण की अनुमति नहीं थी। अलवरूनी के अनुसार अगर वैश्य वेद पाठ सुना है तो वैश्य को न्यायाधीश के पास ले जाते थे और जीभ काट दी जाती थी। अलवरूनी ने वैश्य और शुद्र में कोई अन्तर नहीं देखा।

इस युग में वैश्य वर्ग वैष्णव धर्म तथा जैन धर्म का अनुयायी थां पुराणों में अनेक धनी वैश्य की कथाएं हैं जिन्होंने प्रभुत धनराशि दान देकर पुण्य लाभ उठाया। जिस प्रकार प्राचीन काल में वैश्य बौद्ध धर्म के प्रचार में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उसी प्रकार पूर्व मध्यकाल में वैष्णव और जैन धर्म में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

शुद्रो की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त उन्नति के बावजूद उनकी सामाजिक स्थिति में महत्वपूर्ण परिवत्र्तन नहीं दिखाई देते। स्मृति तथा निबंधों में साधारणतया सेवा और शिल्प शुद्र के व्यवसाय निर्धारित किए गए। कुछ स्मृतियों के अनुसार उच्छिवट केवल गृहभृत्य के लिए है स्वतंत्र शुद्र के लिए नहीं। मेघातिथि के अनुसार शुद्र के लिए आवश्यक नहीं है कि यह द्विजातियों की सेवा से आजीविका चलाए।

इस काल में स्मृतियों तथा निबंधों में भी सेवावृत्ति के अतिरिक्त शुद्र के लिए अन्य अनेक व्यवसाय निर्धारित किए गए हैं जिनसे उनकी आर्थिक स्थिति में निष्चित सुधार हुआ। अति देवल तथा पराशर ने शुद्र के लिए सेवा के अलावा कृषि, पशुपालन, वाणिज्य तथा शिल्प उपयुक्त व्यवसाय बताया। वृहस्पति की परिभाषा के अनुसार सुवर्णकार, लोहार, चर्मकार (चमार) तंतुवाय् (जुलाहा) के कार्य शिल्प के अंतर्गत आते थे। ब्रह्मर्ववर्त पुराण और पद्म पुराण के अनुसार कुंभार, बढ़ई, संगतराश (पत्थर का काम करने वाले) लौहार इत्यादि से संबद्ध शिल्प शुद्रो के लिए निर्दिष्ट किए गए।

आर्थिक दृष्टि से इस युग की महत्वपूर्ण विशेषता है कृषि कार्य का आमतौर पर शुद्रों का व्यवसाय होना ह्वेनसांग तथा इब्न खुर्दाद्ब ने कृषि शुद्रो का सामान्य व्यवसाय बताया है। वे कृषि का संबंध वैश्यों से नहीं बताते। व्यास, पराशर और वैजयंती में एक कृषक वर्ग का उल्लेख है जिन्हें कुटुंबी कहा गया है। इन्हें शुद्रों के अंतर्गत रखा गया है। एक और वर्ग कीनाश का उल्लेख आता है। प्राचीन ग्रंथों में कीनाश वैश्य है किंतु 8वीं शताब्दी में नारद स्मृति के टीकाकार असहाय ने कीनाशों को शुद्र बताया है। इन किसानों को दो वर्ग में बांटा जा सकता है। कुटुम्बी और सीरिन। इन्हें उपज का 1/3 या 1/4 भाग मिलता था। किसान मजदूरों का 1/10 से 1/4 भाग मिलता था। अधिकतर शुद्र कृषक इसी श्रेणी में आते थे। आदिवासी कृषक वर्ग को हिन्दु समाज में समाविष्ट होने पर शुद्र वर्ग में ही रखा गया था। हर्ष चरित में आदिवासी कृषक का उल्लेख है। गुप्त काल के अभिलेखों में शिल्पी (बढ़ई) के खेत का उल्लेख है। निःसंदेह इस

युग में शुद्र कृषकों की संख्या में वृद्धि हुई। करों की अधिकता के कारण वे आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं थे। यह मत प्रकट किया गया कि इस युग में दासों की स्थिति में सुधार हुआ और वे कृषि दास बन गए।

संदर्भ स्त्रोतः

1. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्ण मोहन श्रीमाली, दिल्ली विश्वविद्यालय 1981 पृष्ठ संख्या 373
2. डॉ. के.ए. नीलकंठ शास्त्री पटना बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी
3. डॉ. जयशंकर मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना
4. मध्यकालीन भारत, हरिश्चंद्र वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय

Corresponding Author

Abhishek Kumar Bhagat*

Research Scholar, History Department, Lalit Narayan Mithila University, Darbhanga, Bihar